पंचम अध्याय

जगदीश गुप्त के खण्डकाव्य में – बौध्द दर्शन

पंचम अध्याय

जगदीश गुप्त के खण्डकाव्य में – बौध्द दर्शन

"दर्शन" का अर्थ है जिसके द्वारा दर्शन हो। (दृश्यतेऽनेत इति दर्शनम्) अर्थात जिसके द्वारा सत्य का साक्षात्कार हो, वह दर्शन कहलाता है। यहाँ यह कहना आवश्यक न होगा कि "दर्शन" सृष्टि का विश्लेषण केवल वैचारिक स्तर पर करता है प्रयोगात्मक स्तर पर नहीं। दर्शन वैचारिक स्तर पर सत्य का अन्वेषण करता है।"[1] "दर्शन" की तुलना में "जीवन–दर्शन" शब्द व्यापक अर्थबोधक है। "जीवन–दर्शन से तात्पर्य उस संजीवन शक्ति से है जो युगों युगों तक जीवित रहने के लिए प्रबंध–काव्य को अमरता प्रदान करती है।"[2]

मनुष्य सृष्टि में आगमन के पश्चात् से आनन्द तत्व की खोज में सनध्द है, चिर–आनन्द की प्राप्ति उसका लक्ष्य रहा है। समय–समय पर बडे बडे तत्व चिन्तकों, ज्ञानियों और योगियों की मनीषा आनन्द तत्व की प्राप्ति, दु:ख और दु:ख निवारण के उपायों पर विचार अभिव्यक्ति करती रही है। प्रत्येक प्रबंध–काव्य महत् जीवन दर्शन से अनुप्रणित रचना होती है। आधुनिक कविता विशेषत: नयी कविता की प्रबंध संरचना स्वान्त: सुखाय न होकर जाति, समाज और विश्वजीवन के मन:तोष हेतु होती है।

नयी कविता की प्रबंध संरचना में युगीन विचारधाराओं याने मानवतावादी, लोकतंत्रात्मक, समाजवादी, राष्ट्रवादी आदि तथा समुन्नत युग बोध के विविध आयामों – आधुनिकता बोध, अस्तित्वबोध, मूल्यबोध, काल–बोध, यौन–बोध, अपमान बोध, संत्रास बोध, संशय बोध आदि का समकालीन जीवन की ज्वलंतर समस्याओं के निरूपण और निदान के परिप्रेक्ष्य से यही विचारसरणीयाँ समीक्ष्य काव्यों के जीवन–दर्शन का प्रतिपाद्य हैं। उपर्युक्त विचारसरणियाँ जगदीश गुप्त लिखित "गोपा–गौतम" संवादकाव्य और बोधिवृक्ष खण्डकाव्य में गौतम बुध्द द्वारा प्रकट हुयी है वह दर्शन इसप्रकार है।

भगवान बुध्ददेव और मनुष्यों के शास्ता थे, देवातिदेव थे। परन्तु सबसे पहले वह मनुष्य थे। प्राचीन मान्यता के अनुसार मनुष्य बढ़कर देवता बनता है। आज भी हम मनुष्यत्व के ऊपर देवत्व की बात कहते है। परन्तु गौतम ने इस क्रम को उलट दिया। उन्होंने कहा, "यह जो मानुषत्व है, वही देवताओं का सुगति प्राप्त करना कहलाता है"।

"मनुस्सतं खो भिकखवे देवानं सुगतिगमनसंखातं।"[3]

देवता जब सुगति प्राप्त करता है, तब वह मनुष्य बनता है। देवताओं में विलास है। राग, द्वेष, ईर्ष्या और मोह भी वहां है। निर्वाण की साधना वहां नहीं हो सकती। इसके लिए देवताओं को मनुष्य बनना पड़ता है। मनुष्यों में ही बुध्दपुरूष का अभिर्वाव होता है, जिसको देवता नमस्कार करते हैं। अतः मनुष्य–धर्म देवता–धर्म से उच्चतर है, जैसे कि विराग भोग से महत्तर हैं।

मानवता–धर्म का उपदेश देनेवाले भगवान गौतम स्वयं मानवता के मूर्तिमान रूप थे। यहाँ हम उनके जीवन से संबंधित कुछ प्रसंगों और घटनाओं का उल्लेख करेंगे, जिनसे जगदीश गुप्तजी के "गोपा–गौतम" और "बोधिवृक्ष" इन दो खण्डकाव्यों में पैठी हुई गौतम की गहरी मानवता के कुछ दर्शन हमें हो जाते है। दुःखग्रस्त प्राणियों के लिए गौतम के हृदय में करूणा की विमल धारा बहती थी जिसकी वजह से ही गौतम ने रक्त से लथ–पथ हंस के प्राण बचाये थे और उस पर अपना अधिकार जमा लिया था और उस हंस की दशा देखकर विव्हल भी हो गये थे। जैसे कि –

ग्रीवा मुरझाई मृणाल–सी
पंख छिन्न, अधरखुली चंचु, पलकें श्लथ।
दौड पड़े सिध्दार्थ त्वरित हो विकल अश्रुमुख
क्षण भर में न ही व्याप गया उनके मन में
उस पक्षी का ही नहीं विश्वभर का सारा दुख
ऐसी करूणा नही हृदय से सहृदय बनाती जनमत पावन
उत्तरीय की सिक्त कोर से रक्त पोंछकर,
एक हाथ से धीरे–धीरे खींच लिया शर।[4]

बुध्द प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता का अनुभव करते थे और गौतम पूर्ण ज्ञानी होते हुए भी उन्हें अपने एक शिष्य के वियोग में चारों दिशाएं शून्य सी जान पडने लगी थी। जिसने दुख को जीवन

के प्रथम सत्य के रूप में देखा था, उसकी संवेदनशीलता की सीमा नहीं आंकी जा सकती। परन्तु इसके साथ ही बुध्द अपने हृदय की सब ग्रन्थियों को तोड़ चुके थे। वह शोक–परिदेव से परे थे, हर्ष–उल्लास से परे थे, हर्ष–उल्लास उन्हें नही हो सकता था। दुःखमय या सुखमय अनुभूतियों को अनुभव करना उनके बस में नहीं था। ऐसे हृदयवान और हृदयहीन "बुध्द" मानव थे।

भगवान बुध्द के उपदेश अपने अनुपर आधारित है। बुध्द के स्वभाव और उनके जीवन की घटनाओं में उनकी मानवता के दर्शन होते है। बुध्द के जीवन की कोमलता लोकोत्तर थी। उनकी वाणी में अपूर्व श्लक्ष्णता थी, जो सबको अपनी ओर खींचती थी। क्रोध पूर्ण शब्द कभी उनके मुख से नहीं निकले थे। संकल्प उनके वश में थे। वह मनुष्य थे, परन्तु मनुष्य की दुर्बलताओं और असंगतियों से ऊपर उठ चुके थे। बुध्द के व्यक्तित्व में मानवता की शुभ्र ज्योत्स्ना धर्म की स्थिति बनकर चमकी है।

गौतम ध्यानी थे, ध्यान के प्रशंसक थे। अनेक बार हम उन्हें ध्यानमग्न अवस्थाओं में देखते हैं। कभी वह पर्वत के ऊपर काली अंधियारी रात में खुले में बैठकर ध्यान कर रहे हैं जब कि धीमी धीमी रिमझिम वर्षा भी हो रही है। कभी खुले में नदी के तटपर एक बिना छाई हुई कुटिया में ध्यानस्थ बैठे हैं जब कि आकाश में बादल घिरे हुए हैं कभी वह मध्यान्ह की गर्मी में गृध्रकूट पर्वतपर ध्यानस्थ बैठे है । जैसे कि –

गृध्दकूट पर बुध्द रह रहे।
बादल से विचार घिर आते
झरनों से उपदेश बह रहे।[5]

गौतम को जब सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति हुई तो उसके सप्ताहों बाद तक बिना कुछ खाये–पिये,हिले–डुले एक ही आसन से ध्यान के आनन्द में बैठे रहे। जिस दुर्लभ बोधि के लिए बुध्द ने प्रयत्न किया था वह उन्हें मिल गया। ध्यान सुख का अनुभव करते हुए निर्वाण में प्रवेश करना यह उनके मन में एक प्रलोभन था। वह मार का अन्तिम प्रयत्न था, जिसे उसने सम्यक सम्बुध्द को मार्ग–भ्रष्ट करने के लिए किया। परन्तु मार की पराजय हुई। केवल आत्म–विमुक्ति गौतम को सन्तुष्ट नहीं कर सकी। ध्यान–सुख उन्हें अपने में नही बांध सका। दुःखार्त लोक की करूणा के लिए उन्होंने ध्यान–सुख को छोड़ दिया। निर्वाण–प्रवेश कुछ काल के लिए स्थगित कर दिया गया।तभी

बौध्द धर्म मिला। ज्ञान प्राप्ति के बाद गौतम ने अहर्निश कर्मरत होकर सध्दर्म का प्रचार किया। लगातार पैंतालीस वर्ष तक वह मध्य देश के ग्रामों, निगमों, नगरों, और आरामें में पैदल घूमते फिरे। उनका जीवन अनवरत क्रियाशील था। जिस अन्तिम रात को उन्होंने शरीर छोड़ा उस दिन भी सन्ध्याकाल से लेकर रात के अन्तिम प्रहर तक लगातार वह भिन्न भिन्न व्यक्तियों और जन–समूहों को उपदेश करते रहे, परन्तु गौतम का अनवरत कर्मयोग ध्यानाभ्यास से रहित नही था। नाना प्रकार के लोगों से मिलते हुए पैदल चलते हुए, धर्मोपदेश करते हुए, भगवान सदा समाधि में स्थित रहते हैं। भगवान बुध्द का स्मरण करते ही चित्त शान्ति में डूब जाता है, इन्द्रियां शमित हो जाती है और आध्यात्मिक प्रमोद का अनुभव होने लगता है।

भगवान बुध्द ध्यानी थे, परन्तु उनका ध्यान निष्क्रीय नहीं था। कल्पना–प्रसूत चिन्तन बौध्द ध्यान–पध्दति के सर्वथा बहिर्भूत है। भगवान बुध्द के मन में प्राणियों के हित का संकल्प और एकान्त ध्यान का संकल्प आया करते थे। मैत्री, करूणा, मुदिता और उपेक्षा का वह ध्यान करते थे। सम्यक् दृष्टि और सम्यक् संकल्प का मानसिक चिन्तन ही बाद में सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त और सम्यक् जीविका के रूप में अभिव्यक्ति प्राप्त करता है। काया, वेदना , चित्त और मानसिक विषयों (धर्मों) को लेकर स्मृतिप्रस्थान का उपदेश भगवान ने दिया है, ध्यान या समाधि में ही सत्य के दर्शन होते हैं। बिना ध्यान के प्रज्ञा की प्राप्ति नहीं होती और जिसमें प्रज्ञा नहीं है, वह ध्यान नहीं कर सकता। अतः ध्यान और प्रज्ञा अन्योन्याश्रित हैं । वे एक दूसरे के पूरक हैं। ध्यान का एक विस्तृत और व्यावहारिक क्रम हमे बुध्द–वचनों में मिलता है। जिसका अभ्यास युगों से साधन करते आये हैं। गौतम के बौध्द धर्म अपने साधनात्मक रूप में चित्त का अभ्यास या ध्यान ही है।

आत्मदर्शन या आत्म–ज्ञान का अर्थ है अपने में सारे जगत और सारे जगत में अपने को देखना। निष्पाप अर्हत्, यह बौध्द साधना का निर्वचन है। अर्हत देखता है कि इस भौतिक ओर मानसिक जगत में सब प्रवाहशील है, जो प्रवाहशील हे, वह नित्य नहीं है। जो अनित्य, वह सुख नहीं है। अतः चाहे रूप हो, चाहे वेदना, संस्कार, विज्ञान, अन्दरूनी, बाहरी, अपना पराया–सभी अनित्य , दुःख है।

बुध्द का बौध्दधर्म बुध्दि प्रधान धर्म है। बौध्द धर्म के विशेषतः बुध्दिवाद ने इस युग में लोगों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। बौध्द धर्म के ऐसे अनेक गुण हैं जो भिन्न भिन्न प्रकृति के

लोगों को भिन्न भिन्न युगों में आकृष्ट किया है। बुध्द ने मध्यम मार्ग से धर्म का उपदेश दिया है।

कोरा बुध्दिवाद मनुष्य को प्रकृतिवाद या भौतिकवाद में ले जायेगा, जिसप्रकार कोरा श्रध्दावाद अन्ध विश्वास में बौध्द धर्म दैवी विश्वासपर आधारित है ही नहीं वह भौतिकवाद से भी दूर है। वह सिर्फ प्रज्ञा के विकास पर जोर देता है। बौध्द धर्म एक विज्ञान है। परन्तु जहॉं वह प्रज्ञा की व्याख्या "कुशलचित्त संयुक्त ज्ञान" के रूप में करता है वह विज्ञान से आगे बढ़कर नैतिक दर्शन बन जाता है और विज्ञान का पथ–प्रदर्शन करता है। बुध्दिवादी व्याख्या पर खरा उतरते हुए भी वह बौध्दिक नहीं है। इसलिए उसमे श्रध्दा की महिमा सुरक्षित है। बुध्द धर्म चित्त–शुध्दि के लिए था और चित्त–शुध्दि का लक्ष्य था निर्वाण। श्रध्दा इंद्रिय चित्त की वह प्रसाद–मयी अवस्था है जो एक ओर साधक को उन्नत आध्यात्मिक अवस्थाओं को अनुभव करने के लिए उत्साहित करती है और दूसरी ओर संशयादि चित्त मनों को दूर कर चित्त को शान्ति प्रदान करती है। जहॉं तक भगवान बुध्द और उनके शिष्यों का संबंध है, निर्वाण अध्यात्मिक अनुभव की एक अवस्था का नाम है। कुछ विशिष्ट अर्थो में उसे चित्त की अवस्था विशेष भी कहा जा सकता है। भगवान बुध्द ने निर्वाण का उपदेश दिया परन्तु निवृत्त होकर वह स्वयं यहॉं इस जीवन में रहे। जैसे –

मैं न रहूँगा
किन्तु रहेगी मेरी वाणी।
मुझसे भी बढकर
जन–जन मोहक कल्याणी।[6]

यहीं उनका सर्वोत्तम उपदेश था। निर्वाण का आधार जीवन में है। वह एक वास्तविकता है, दृष्ट धर्म हैं, देखी हुई वस्तु है। जीवन की विशुध्दी ही विमुक्ति के रूप में साधक के लिए प्रकटित होती है, यही निर्वाण है। विशुध्दि और निर्वाण दोनों एक हैं। आचार्य बुध्दघोष ने अत्यन्त सार्थकता पूर्वक कहा है –

'विसुध्दीति सब्बमल विरहितं अच्चन्तपरिसुध्दं निब्बानं वेदितंब्बा
सुत्त निप्पात में भी निर्वाण को अंतिम शुध्दि कहा गया है।"[7]

यह अन्तिम शुध्दि–रूपी निर्वाण केवल बुध्दि के चिन्तन या विशर्म के द्वारा प्राप्य नहीं। उसे जीवन में साक्षात्कार करना पड़ेगा यह एक प्रकार का आध्यात्मिक प्रयास ही है। निब्बाण दु:ख विमुक्ति की

अवस्था तो है ही, उसे निश्चिततम अर्थो में परम सुख की अवस्थ भी कहा गया है। निर्वाण वह अमानुषि रति है, जो धर्म का सम्यक् दर्शन करने से उत्पन्न होती है। वह निर्विषय मत का आनन्द है। ऐसा सुख है, जो निरामिष है, आलम्बन की अपेक्षा से रहित है, अतीन्द्रिय है। इसी सुख का अनुभव करते हुए बिना हिले-डुले, खाये-पिये तथागत छः वर्षो तक एक आसन से समाधि अवस्था में बैठे रहे थे। जैसे –

छः वर्षो तक रहे
साधनालीन दीप्ति से आपूरित हो
देह क्षुधामय
प्राण तृषामय।[8]

नयी कविता अस्तित्ववादी दर्शन से बहुत दूर तक प्रभावित है। अस्तित्ववाद के प्रभाव से ही नयी कविता में जीवन की निरर्थकता और व्यक्ति की अवशता के स्वर हैं। अस्तित्ववादी चेतना व्यक्तिनिष्ठ है और यह व्यक्तिनिष्ठ चेतना आस्था के स्वर खो बैठी है। इसलिए डा.जगदीश गुप्त गोपा-गौतम संवादकाव्य में कहते है कि पति-पत्नी, पुत्र, माता-पिता यह सब झूठे रिश्ते हैं। आदमी अकेला आता है और अकेला ही जाता है। यह मोह-माया झूठ है। सब कुछ क्षणभंगुर है। मेरा-पराया का कोई अस्तित्व नहीं है जैसे कि –

यह स्त्री भी तुम्हारी नहीं है,
और न यह पुत्र ,
तुम किस मोह में पडे हो,
सब कुछ नाशवान हैं।[9]

मनुष्य दैनंदिन व्यापार में उलझा रहता है, इसलिए वह जीवन का सही मतलब नहीं समझता। मृत्यू के चिन्तन से जीवन के प्रती निराशा पैदा हो जाती है। मृत्यू चिरंतन है और हर एक को उसमें समाना है। मिट्टी मिट्टी में मिल जाती है। इस सत्य को ध्यान में रखकर मानव ने अपना प्रतित जीवन सब के कल्याण के लिए याने मानव जाति के कल्याण के लिए बिताना चाहिए। इसलिए गौतम बुध्द कहते है कि –

मृत्यू-भय से –
हम सब केवल
सतही लहरों पर ठहरे हों ।

संभव है,
जीवन के अभिप्राय
इससे भी गहरे हों।
उसी मृत्यु भय से
मुझे पाना है परित्राण ।
अपने लिए ही नहीं –
सबके लिए,
धरती पर
लाना है परित्राण।[10]

"सर्वक्षणिकं क्षणिकम् " कहकर बौध्द–दर्शन ने सर्वप्रथम क्षणवाद को जन्म दिया। बौध्द दर्शन ने क्षण को सत्य बताते हुए जगत् और जीवन को निस्सार कह दिया।

महाशून्य में स्वल्प शून्य लय हो जाता है।
मनोराग भी इसी तरह क्षय हो जाता है।
बुझ जाता है दीप, ज्योति का त्राण वही है।
सब दुःखो से वही मुक्ति, निर्वाण वही है।[11]

क्षण को सत्य की अनुभूति का क्षण माना है। यही क्षण मुक्ति का क्षण भी है। गौतम ने सभी से मुक्ति पा ली है। सारी कामनाओं पर विजय प्राप्त किया है।

गौतम के बौध्द धर्म में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रभाव भी दिखाई देता है। इस दर्शन के अनुसार विश्व में शोषित और शोषक तथा शासित और शासक यह दो विरोधी शक्तियाँ कार्य कर रहीं हैं। इनमें सदैव परस्पर संघर्ष बना रहता है। अन्तः विजय शोषित या सर्वहारा वर्ग की ही होती है। पैसों के लालच के कारण मनुष्य स्वार्थी बनता है।

औरों की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। अधिक अमीर बनने के ख्वाब में वह हमेशा रहता है। गौतम बुध्द ऐसे व्यक्ति के जीवन को एक घोंघे के कीडे के समान मानते है जो कि वह लकडी में

रहकर अपना आपुन को चाहे जैसा अस्तित्व बना लेता है। उसी तरह शासक लोग अपना अस्तित्व जगाकर जन को अधिकार से वंचित कर उसका स्वत्व छीनकर विषमता फैलाते है। जैसे कि –

जोड़ रहा जो स्वार्थ–वृत्ति से पैसा–पैसा।
उसका सब जीवन–घोंघें के कीडे जैसा।
है जन को अधिकार स्वत्व ऐसों का छीने।
जल को समतल किया विषमतामय धरती ने।[12]

गौतम बुध्द सर्वहारा वर्ग के लिए नारों या झण्डों की बात नहीं करते बल्कि उनकी यातना, दु:ख और दर्द को समझने तथा समझकर अभिव्यक्त करने की भावना, उनके प्रती सहानुभूती प्रकट करने की भावना व्याप्त है। इसलिए तो गौतम बुध्द ने लोहकार चेदी के घर जाकर स्नेह भाव से शूकर मार्दव का अशन कर उसके प्रण को निभाया था। गौतम किसी को भी तुच्छ नहीं समझते थे, किसी की उपेक्षा नहीं करते जैसे –

नहीं उपेक्षित किया बुध्द ने ।
कभी दरिद्रो का आमन्त्रण ।
लोहकार चेदी के घर भी।
गये, निभाना था उसका प्रण।[13]

गौतम बुध्द में सामाजिक विषमता का दर्शन भी होता है। औरों के पास तन ढकने के लिए वस्त्र नहीं है और स्वयं रेशमी वस्त्र पहनना यह विषमता उन्हें मान्य नहीं है। प्रतिष्ठित राजवर्ग होकर भी जनता को मारे–मारे फिरना पड़ता है। अपने भाग्य को दोषी ठहराकर जीवन बिताना पड़ता है। असल में प्रजा या सामान्य जन ही एक मुख्य आधारस्तंभ होता है। लेकिन उन्हें ही मजबूर होकर कठिण परिस्थिति से जूझजूझकर जीवन सहना पडता है। ऐसी विषम परिस्थिति को देखकर गौतम विवश होकर कहते हैं –

मेरे तन पर वस्त्र रेशमी,
औरों के तन रहे उघारे
समासीन राजन्य वर्ग हो
फिरें और सब मारे – मारे ।

यह मुझको स्वीकार नहीं था,
मेरा जीवन कलान्त हो उठा।
मेरा चित्त अशान्त हो उठा।[14]

भगवान बुध्द के मतानुसार दुःख का अर्थ ऐहिक दुख ही होता है, तथा इसके बुध्द वचनों में कई प्रमाण भी मिलते हैं। अन्य धर्मो के समान बौध्द-धर्म आत्मा तथा परमात्मा के सम्बन्ध पर आधारित नहीं है। उसका अधिष्ठान जीवन की अनुभूति है। दुख का पारलौकिक अर्थ लगाकर पुर्नजन्म के समय उसका सम्बन्ध जोड़ना बुध्द मत के विरूध्द है। संसार में दरिद्रता से जन्म लेकर पलनेवाले दुःखों का नाश होना अनिवार्य हैं। गौतम बुध्द ने आदर्श बौध्द समाज के तत्व संघ के अन्तर्निहित किये है। संघ में व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार के लिए कोई स्थान नहीं है। केवल आठ ही चीजें भिक्षु को अपने पास रखने का आदेश देते है। उनमें सबसे पहला वस्त्र हैं। इसमें भी परिग्रह की भावना निर्माण न होने पाए, ऐसा ध्यान रखना गौतम ने प्रधान माना है। इसलिए तो अपने आप पर रेशमी वस्त्र और औरों के पास सिर्फ तन ढकने के लिए भी वस्त्र नहीं है तो उन्होंने रेशमी वस्त्र, आभूषणों का भी उन्होंने त्यागकर गिरवी वस्त्र पहने है। सम्पत्ति पर व्यक्तिन्विशेष का अधिकार सारे अनर्थ का कारण है। गौतम ने अपेक्षा से ज्यादा धन इकट्टा करने को विरोध किया है। जितनी चाहिए उतनीही सामग्री जमा लेनी चाहिए उन्हें भिक्षा के रूप में ज्यादा अनाज भी अन्य लोग देते थे तो वे इन्कार करते थे और मुट्टीभर अनाज ही स्वीकार करते थे। इतना ही नहीं बिम्बसार राजा ने अपना राज्य गौतम को देने के लिए तैयार थे लेकिन गौतम ने स्वयं को त्राता समझकर बिम्बसार से राज्य लेने के बारे में अस्वीकृति दी थी। इसतरह गौतम में धनसंपत्ती का लालच नहीं है, उन्हें राज-वैभव बाँध नहीं सका है –

मैं करूणा का पात्र नहीं हूँ,
जिन्हें राज-मद वैभव बाँधे,
जिन्हें मोह-माया मद नाँधे,
वे जन करूणा के भाजन
उन जैसा मैं जन-मात्र नही हूँ
मैं करूणा का पात्र नहीं हूँ।[15]

साम्यवाद बौध्दधर्म का प्रधान लक्षण है। वहाँ प्रत्येक को अपनी बुध्दि से सोच–विचार कर किसी बात को स्वीकार करने का श्रेष्ठ उपदेश है। हिंसा का मूलोच्छोदन या अहिंसा का प्रचार उसका एक मुख्य अंग है। इसलिए तो गौतम बुध्द ने कोसल प्रदेश में कपटी मनुष्य अंगुलिमाल की वजह से आतंक फैला हुआ था। वह पथिकों की अँगुलियाँ काटकर माला करता था। अंगुलियों से बहता हुआ रक्त चाटता था। तो गौतम ने अपने शांत मना से उसके समीप जाकर हाथ सामने कर उसे अंगुलियाँ काटने को कहते है जैसे –

लो यह मेरा हाथ,
काट दो अंगुलिमाल अंगुलियाँ सारी
फिर सोचा, संभव है कितना अबोध
यह साधु, सत्य मुझे जानना नहीं है
इसीलिए इतना निर्भय है
मुझको पहचानता नहीं है।
पर जब शब्द सुने गौतम के चकित रह गया।
रोक नहीं पाया प्रवाह को, स्वंय बह गया।
लो यह मेरा हाथ थामकर
काटो अंगुलिमाल अंगुलियाँ।
पूरी कर लो अपनी माला
ओर गूँथ लो नूतन कलियाँ।
त्वरा नही है मुझे
तुम्हारा हित ही करने आया हूँ मैं।[16]

गौतम में स्थित अहिंसा के कारण ही अंगुलिमाल जैसे हिंसा तत्पर दस्यु का रूपांतर भिक्षु में करने में सफल हो गये हैं।

बुध्द के धर्म में कर्म–काण्ड के लिए स्थान नहीं है। वस्तुतः उन्हें याग और यज्ञ को धर्म के अर्थ में मानने मे घृणा थी। कर्म के स्थान पर नैतिकता के अर्थ में उन्होंने धर्म को माना। यद्यपि धर्म शब्द ब्राहमण ओर बुध्द द्वारा प्रयुक्त हुआ लेकिन दोनों के प्रयोग में मूलतः महान अन्तर

हैं। यथार्थ में यह कहना ही पडेगा की बुध्द संसार में वह प्रथम शिक्षक थे, जिन्होंने नैतिकता को धर्म की नींव और सार बतलाया। बौध्द धर्म की नैतिकता ही उनका वास्तविक धर्म है। बौध्द धर्म में ईश्वर के लिए स्थान नहीं है। ईश्वर के स्थान पर नैतिकता है। तीर्थाटन, यज्ञ आदि उपेक्षित मानी है। जैसे कि डा.जगदीश गुप्त द्वारा लिखित खण्डकाव्य "बोधिवृक्ष" में संकलित त्रिरत्न कविता में गौतम कहते है कि –

कर्मकाण्ड तीर्थाटन, हिंसा–यज्ञ विवर्जित
कृच्छ साधनाएँ मानी गौतम ने गर्हित।
भेद–भाव मिट गया तन्तु समता ने ताने।
त्याग अंध–विश्वास, श्वास की मनुष्यता ने।[17]

तानाशाही का भगवान बुध्द ने विरोध किया है। अजातशत्रु के मन्त्री ने उनसे एक बार प्रश्न किया कि वे वज्जियों पर कैसे विजय प्राप्त कर पायेंगे? भगवान बुध्द ने उत्तर में कहा कि जब तक वज्जि गणतन्त्र राज्यशासन का संचालन बहुमत के द्वारा करता है तब तक वह अजेय हैं, जिस दिन वज्जि शासन गणतन्त्र प्रणाली को त्याग देगा उसी दिन वह पराभूत होगा। जैसे –

गौतम बुध्द में व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना को भी बढ़ावा दिया है। गौतम बुध्द पराधीनता को पाप और दुःख का बीज मानते है स्वाधीनता का आग्रही होने के लिए कहते है जैसे –

स्वाधीनता वरेण्य
उसी का मार्ग सही है
व्यक्ति मुक्ति पथ पर चलकर ही
जन–समाज को मुक्त करेगा

स्वयं बुध्द होकर औरों के बन्धन वह किस भाँति हरेगा ? नहीं उच्चकुल–जन्म यशस्वी होने का आधार सुनिश्चित

हेय नहीं कोई भी मानव,
कोई प्राणी त्याज्य नहीं है।
कर्म भूमि सबकी है, इसपर
किसी एक का राज्य नहीं है।[18]

गौतम समता के प्रचारक थे। बुध्द स्मानता के सिध्दान्त पर दृढ़ थे। सामाजिक विषमता के विरूध्द उन्होंने उपदेश दिया, संघर्ष किया और उसकी जड को खोदने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया। बुध्द ने भिक्षुसंघ में शूद्रों को सम्मिलित किया। स्त्रियों को भी भिक्षुणी बनने की अनुमति दी। बुध्द असमानता को एकदम नष्ट कर देना चाहते थे इसलिए तो उन्होंने बौध्द धर्म का प्रसार कर मानव को समता देने का प्रयास किया। यथा –

बौध्द–धर्म प्रसार था, थामे नहीं थमता।
मिली पहली बार मानव को वहीं समता।
जनमजात समानता का कर दिया उद्घोष।
मिला जन–जन के हृदय को आन्तरिक परितोष।
पतितपावनता ,महाकरूणा परम कल्याण।
दण्ड से पिसती प्रजा को मिला अद्भुत त्राण।[19]

बुध्द ने अहिंसा के साथ साथ सामाजिक, बौध्दिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता की शिक्षा भी धर्म के एक अंग के रूप में दी है। उन्होंने मनुष्य और स्त्री में होनेवाली समता का भी उपदेश दिया है। बुध्द ने जो कुछ भी उपदेश दिया, उसे आँख–मूँदकर मान लेने के लिए कदापि नहीं कहा। महापरिनिर्वाण सूत्र में उन्होंने आयुष्यमान आनन्द से कहा कि यह धर्म अभ्यास और आचरण पर निर्भर है। इसे अन्धविश्वासपूर्वक नहीं ग्रहण करना चाहिए। इसमें उपेक्षित सुधार भी किया जा सकता है। समय और परिस्थिति के अनुसार आवश्यकता होने पर नियमों में परिवर्तन किया जा सकता है। वे चाहते थे कि उनका धर्म अतीत के शुष्क वृक्ष की भाँति न रहे, बल्कि हर समय हरी–भरी पत्तियों के साथ जीवित रहे। यही कारण है कि उन्होंने कहा है –

जब तक मेरे शब्द रहेंगे,
अर्थ रूप मैं स्वयं रहूँगा।
नूतन अर्थों के माध्यम से,
सदा नया सन्देश कहूँगा।[20]

दुख तथा क्लेश से मुक्ति पाने बुध्दप्रणीत मार्ग मनपरिवर्तन पर आधारित है। मनुष्य के जीवन को सुखी बनाने के लिए नैतिक रूप में उसके मन को सुसंस्करित करना अनिवार्य है। इसपर

भगवान बुध्द ने जितना अधिक ध्यान दिया शायद ही संसार के किसी धर्म या विचार प्रणाली ने नही दिया। मनुष्य में विवेक हमेशा जागृत तथा कार्यक्षम बनाये रखते हुए नैतिक तत्व को श्रध्दा का अधिष्ठान प्रदान करना यह गौतम बुध्द का हेतु है। अपने भिक्षुओं को सर्वप्रथम भगवान बुध्द ने यह आदेश दिया था कि संसार की हर दिशा में जाकर धर्म का प्रचार करे। किन्तु वर्तमान युग में हम देखते हैं कि भिक्षु अपने अपने विहार में रहकर आत्मोन्नति का मार्ग ढूंढ रहे हैं, यह कदापि उचित नहीं हैं। बौध्द धर्म कोई एकान्त में आचरण किया जानेवाला रहस्यमयी आचार नहीं है वह तो एक प्रबल सामाजिक शक्ति है। आज भी विनाश की भयानक चोटी पर खडे संसार को मार्ग दिखाने का सामर्थ्य इस शक्ति में हैं।

गौतम का बुध्द-धर्म ही मुक्ति का एक साधन है। किसी भी समाजव्यवस्था के नियमों का आधार नीतिपूर्ण हो, तभी वह टिक सकती है। नियमों के बलपर ही अल्पसंख्यकों को किसी भी नियम का पालन करना पडता है। बहुसंख्यकों को नीति बंधन के लिय समाज व्यवस्थित रूप से चल सके यही देखकर कार्य करना पडता हे। नीतिपूर्वक रहने का व्रत लेकर समाज धर्म को धारण करें तभी उपयोगी होता है। गौतम बुध्द ने बहुजन के हित के लिए मध्य–मार्ग का अनुसरण किया है।

प्रचलित मान्यता के अनुसार गौतम के महाभिनिष्क्रमण को अनुभव त्रय जरा, रोग और मृत्यू के दर्शन से ही मात्र अनुप्रेरित मान लेने पर संसार से विरक्त नहीं हुए तो गौतम के दाम्पत्य जीवन की फाँस के कारण गौतम ग्राहस्थिक जीवन से विमुख हुए है। फाँस के रूप में परिणय के अनन्तर इस वर्षो तक गोपा–गौतम का निसंतान रहना, फिर गर्भ धारण के पश्चात गोपा का निरन्तर गौतम से अलग रहना, गौतम की छाया से भी बचना आदि कारणों से गोतम के मन में गोपा के सतीत्व के प्रति संदेह निर्माण होकर गौतम के मन में नारी जाति के प्रति क्रूर वितृष्णा भर गयी है। इसलिए गौतम संभववियोगी बन गये है। आदमी मन ही मन वितृष्णा भरने के कारण एक तो खुदखुशी करने पर मजबूर होता है या विरक्त बन जाता है। गौतम ने खुदखुशी जैसे पलायनवादी कृत्य न अपनाकर उन्होंने अपनों का त्याग कर विरक्ति का मार्ग जगतकल्याण के लिए अपना लिया है यह एक प्रकार का आधुनिक युगबोध है। गौतम के बारे में डा. जगदीश गुप्तजी ने प्रश्नांकित बुध्द अंश में कहा है कि –

मुझे नहीं लगता,

दर्शन केवल

जरा--व्याधि--मृत्यु का

उनके गृह–त्याग का

एक मात्र कारण था,

उसका निमित्त था

राहुल का जन्म भी,

जिसे "राहु" कहा गया

सहसा उनके द्वारा

सुनते ही समाचार।[21]

गौतम बुध्द मनुष्य पुत्र होकर पैदा हुए थे और वे भी एक साधारण व्यक्ति थे तथा उनमें साधारण व्यक्ति की तरह राग–अनुराग की भावना, परिणय प्रसंग में हास–उल्लास की बाते, चुम्बन, कंपन आदि बाते भी घटित हुयी है। नव–दम्पति की संकुचता भी दिखाई देती है। परिणय की सब विधियाँ भी उन्होंने पार कर ली है। जैसे कि –

हुई बाद में पूरी

सब परिणय की विधियाँ

किन्तु उन्हें मिल गयी

पूर्व ही ज्यों नव–निधियाँ।[22]

परिणति के बाद दस वर्ष तक यशोधरा की गोद न भरने के कारण समाज से बन्ध्यापन की टिका के बोझ से वह मौन रहती थी। अपने आप पर धिक्कार कर वह गौतम के पौरूष को भी धिक्कार रही थी, तो गौतम गोपा की धिक्कार सुन कर स्वयं को निष्फल–औरत कहकर बेबस हो जाते है। जैसे –

वह बन्ध्या है या मैं ही निष्फल औरस हूँ?

बीत गये दस वर्ष, करूँ क्या, मैं बेबस हूँ।

कैसे उसकी कोख भरे, क्या यत्न करूँ मैं?
वह नियोग – पथवरे, लाज से डूब मरूँ मैं।[23]

इसमें गौतम की दृष्टि बहुत ही सखोल है। गोपा की गोद सूनी रहने से वे अकेली गोपा को दोषी नहीं ठहराते। जो कि आज अकेली स्त्री को ही दोषी ठहराकर उसका धिक्कार कर पुरूष की दुबारा शादी की जाती है। जो की एक प्रकार का विडंबन है। पूरी जाँच पडताल करके, वक्त की प्रतिक्षा करके ही निर्णय लेने की, सहनशीलता की सीख गौतम ने हमे दी है जो आज भी हमे नयी सोच में डाल देता है वह एक तरीके से नूतन दर्शन ही है।

बिना सोचे समझे लांछन लगाने का अधिकार किसी को भी नही है। गोपा द्वारा गौतम पर नारियों से घिरे रहना इस आरोप की सत्य–असत्यता बतलाते हुए वे कहते हैं –

हॉं, तो उन नारियों की बात
अभी पूरी नहीं हो पायी।
उनमें रमता कैसे ?
जान लिया मैंने जब –
वे सब तो मेरी पिपासा को
शतविधि उद्दीप्त कर
मुझे एक साधन बना
चाहती थी राजकीय वैभव,
गौरव, प्रश्रय,
अहर पदोन्नति
मात्र अपने स्नेह भाजनों की
पतियों, पिताओं, बन्धु–बाँधवों की
अथवा किन्हीं गूढ अभिप्रायों से
शासन के गोपन रहस्यो को
किसी भाँति हथियाना।[24]

इसलिए तो गौतम इस लज्जा–हीन व्यवहार से गौतम के मन में संदेह उपज गया था, गौतम चाहते थे तो उन नारियों की देह दुर्लभ नहीं थी। इससे गौतम की व्यक्तिवादिता का दर्शन हो जाता है। आज के पुरूष ऐसी संधी मिलते ही उसका फायदा जी जान से लेते है। जो कि एक दुष्य प्रवृत्ती ही हैं।

गौतम बुध्द के अनुसार प्रत्येक का अपना–अपना कर्म अपने साथ होता है। खुद की तकदीर खुद ने ही बनानी चाहिए। इसलिए तो गोपा के कक्ष में गौतम का प्रवेश नकारा गया तो वे उसके कक्ष में जाना भी बंद किया, इतना होने पर भी गौतम अपनी पत्नी की सार्थकता पाने के लिए आज्ञा चाहते हैं, इससे स्त्री स्वातंत्र्य , पत्नी प्रेम का दर्शन होता है। जैसे –

मार्ग में तुम्हारे कभी आता नहीं,
कक्ष में तुम्हारे अब जाता नहीं,
जो चाहो करती रहो
मुझको क्या,
अपना कर्म अपने साथ होता है
अपना भाग्य अपने हाथ होता है
तुमझे मुझको जो कुछ कहना था,
कह चुका।
जितना गृहस्थी में रहना था,
अब मुझको जाने दो।
कुछ सार्थक पाने दो।[25]

इसमें कर्मसिध्दान्त का भी परिचय हो जाता हैं।

संसार की गतिशीलता में सुख दुख के उतार चढाव आते ही रहते हैं। लेकिन जो मनुष्य अविचल रहकर कुछ बाते भूल कर कुछ याद करते हुए आगे बढ़ता है वह सफल होता हैं।

प्रत्येक पुरूष के पीछे एक नारी का ही हाथ होता हैं। नारी ही पुरूष को अपने कर्तव्य के प्रति सजग करती है। इतना ही नहीं नारी के मोह–पाश में जकडे पुरूष को उस मोह से हटाकर

अपने कार्य कर्तव्य के लिए जगाती हे। गौतम कौ विशाल–हृदय व्यक्ति बनाने के पीछे गोपा ही कार्यरत थी। गौतम के मन में नारी के प्रती लौकिकता, अतूट श्रध्दा दिखाई देती हैं। जैसे –

तुम नारी हो
तुमने राहुल को ही जन्म नहीं दिया
अपने व्यक्तित्व से
आज तुम मेरे भीतर
एक बुध्द को जन्म दे रही हो
जिसका मातृत्व मेरा
और पौरूष तुम्हारा है
मेरा औदार्य आज
तुम जैसी स्नेहमयी,
फिर भी प्रतिक्षण निगूढ़
नारी से हारा है।[26]

सच्चा सिध्दार्थ बनने का श्रेय गौतम अपनी पत्नी यशोधरा को ही देते है। सच्चा सिध्दार्थ बनने का वादा गौतम ने पूरा किया है। लेकिन आज अनेक कसमें, वादे दिये जाते है बल्कि वे निभायेंगे, पुरे करेंगे इसकी कोई ग्यारंटी नहीं। गौतम का वादा निभाना का संकल्प आज के लोगों को एक सीख ही दी है।

गौतम अपने घर में प्रीति, ममत्व की एकता होनी चाहिए, अपनत्व का भाव होना चाहिए, एक दूसरे के प्रती आदर, सम्मान के साथ पेश आना चाहिए, प्यार ममता, सहानुभूति, सच्चाई का संघटन होना चाहिए ऐसा मानते है। अपने ही घर में उन्हें दुरावा पसंद नहीं है। जैसे –

अपना ही घर जिसके कारण
पराये से गया–बीता लगने लगे,
अर्थ ही, क्या ऐसे अपनत्व का?
यही रूप होता है, प्रीति का ममत्व का?[27]

गौतम बुध्द ने नारी पर आरोप किया है कि युग–युग से नारी पर बंधन तथा मर्यादा डाली जाती है और चुपचाप उसे सहती है। नारी को व्यवस्था में सुरक्षा मिलने पर भी उनमें प्रतिवाद करने की, संघर्ष करने की भावना नहीं होती। जैसे की –

नारी को इतनी सुरक्षा मिली
युग–युग तक
ऐसी व्यवस्था को
वह सहमति देती रही,
तुम्ही कहो
किसने कहाँ, कितना प्रतिवाद किया?[28]

इसमें गौतम ने नारी को अपने अधिकार के प्रती सजग रहने का संदेश दिया है। नारी को प्रतिवाद करने के लिए ललकारा है। पर डा.जगदीश गुप्त द्वारा लिखित "गोपा–गौतम" संवाद काव्य में वर्णित यशोधरा ने प्रतिवाद किया है। आज भी नारी को पुरूष के बराबर हक मिल रहे है। अतः आज की नारी में अन्याय, अपमान का प्रतिकार करने की हिम्मत आयी है। वह युग–युग की कारा से मुक्त होकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व दिखाने में भी वह कामयाब हो गयी है। पुरूष के कंधे से कंधा लगाकर लढने में भी वह सफल हुयी है। हर क्षेत्र में वह अपना अस्तित्व बनाने लगी है। गौतम बुध्द ने भी अपनी पत्नी यशोधरा को स्वायत्ता प्रदान की है।

गौतम बुध्द का अध्यात्म पर विश्वास नहीं हैं। वह ईश्वर की सत्ता नहीं मानते। इसलिए तो वे अपने को राम नहीं मानते और गोपा को भी सीता नहीं मानते, अग्निमय परीक्षा में भी उसका कोई विश्वास नहीं है। वे नारी के सत्य को अग्निमय परीक्षा जैसे उपायोंसे पहचानना भी इन्कार करते हैं। वे अनुभव पर आधारित प्रज्ञा उपाय ही मार्गदर्शक मानकर उसमें ही मन की आवाज सुनते है। गौतम संकट के समय में मनुष्य का एक मात्र साथी विवेक याने बुध्दि को मानते हैं। बुध्दि को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

गोपे ! किन्तु संकट का
एक मात्र साथी है
मेरा विवेक ही।[29]

बुध्दि के कारण ही मनुष्य बुरे कर्म से बचकर अच्छे कर्म, सफल मार्ग ढुंढने में सुयश प्राप्त करता हैं और अपनी जिंदगी आनंदता से बिताता है। इसमें गौतम बुध्द ने बुध्दि श्रेष्ठता का दर्शन कराया हैं।

गौतम बुध्द ने आत्मा का सिध्दान्त अस्वीकृत कराकर आत्मा की चिरंतनता और पुनर्जन्म कल्पना बुध्द ने तिरस्कृत की। निर्माण होनेवाला प्रत्येक जीव नष्ट होनेवाला है। व्युत्पत्ति, विकास और लय इन प्रक्रियों से जीव चला जाता है, कोई भी चीज अपरिवर्तनीय नहीं है। परिवर्तन सभी के लिए है और यह परिवर्तन हर एक प्राणियों में प्रत्येक पल के लिए होता है। एक न एक दिन सब कुछ नष्ट होनेवाला है। परिवर्तन की इस क्षण-भंगुर सृष्टि का धर्म हैं। जैसे --

इस परिवर्तन क्रम से –
आज यह तो कल वह,
सब कुछ निरर्थक हो जायेगा
मेरा, तुम्हारा या राहुल का
मृण्मय शरीर यह
अन्ततः शून्य में समायेगा।
परिवर्तन ही तो
इस क्षण--भंगुर सृष्टि का
सुस्थायी धर्म हैं।[30]

गौतम भविष्य को देखते नहीं तो वे आज को देखते है। तटस्थ, सारे सम्बन्धों से निरासक्त, सुख दुख से विलग, अपनेपन से अलग ऐसी दृष्टि सही दृष्टि मानते हैं। जिसमें किसी भी प्रकार का कलुष न हो। दुर्वह अन्तराल में जमाये हुये पंजे ने अस्तित्व को दबोछनेसे कीचक बनाये हैं। गौतम चाहते है कि कृष्ण की तरह इस दुःखरूपी यमुना--दह में धँसकर नाथ सकने के लिए कहते है। इसमें गौतम के मन में होनेवाला विश्वप्रेम, अपनी पीडित जनता के प्रति अगाध करूणा दिखाई देती हैं। जैसे –

महा काल--व्याल को ।
शक्ति दो, शक्ति दो,
जो केवल अपने ही

घर तक सीमित न रहे
ऐसी लोकव्यापी
अनुरक्ति दो।[31]

गृहकेन्द्रित निजता की सीमाएँ तोडकर करूणा का साम्राज्य फैलाने के लिए पृथ्वी पर फैला हुआ दुःख दाह नष्ट करना चाहते थे। लेकिन अपने कार्य का बोझ अपने परिजनों पर पडने नहीं देते तो खुद पर ही बोझ का सर लेते हैं। जैसे –

मैं अपने प्रश्नों का दंश स्वयं झेलूँगा ।
पडने नही दूँगा तुम दोनों पर दुसह भार,
सारा–का–सारा बोझ अपने सर ले लूँगा।[32]

स्वयं का बोझ स्वयं को ही ढोना चाहिए इस दर्शन का बोध हो जाता हैं।

गौतम बुध्द में आज के राजनीतिपर रोष दिखाई देता है वे राज–तन्त्र को सेवा के नाम पर एक दिखावा ही मानते हैं। राजनीति में होनेवाले स्वार्थी लोगों की श्रृंखला इतनी गहरी होती है कि उसमें सामान्य जनों को आने ही नहीं देती। सुख–सुविधाओं, योजनाओं का नारा लगा दिया जाता हैं। गरीबों के लिए। लेकिन सत्ताधारियों की रोटी पका दी जाती है। सत्ताधारी अपने दोष पर परदा डालकर औरों के दोषों को बडे चाव से आरोपण करते हैं। जो आदमी आवाज उठाने की कोशिश करता है या आवाज उठाता है उसे मृत्यु से बढ़कर शिक्षा दी जाती है। या अपने मार्ग में रूकावट बनने वाला फंादा हमेशा के लिए मिटा दिया जाता है। ऐसी विषमता गौतम को विवश कर देती है, इसलिए तो वे शासकों के प्रती घृणा व्यक्त करते है, और कहते है कि अपराधी को शासन तो दूर लेकिन निरपराधियों को भी बंदी बनाया जाता है। जैसे –

कितने अपराधी
निर्भय प्रश्रय पाते हैं
मान्य राज–पुरूषों की
स्निग्ध छत्र–छाया में।
कारों में बंदी हैं।
कितने ही निरपराध

लगा हुआ घुन जिनकी काया में।
अनजाने अक्षर बनाता है, मृत्यू के।
पग–पग पर देकर उत्कोच
कौन अनुचित लाभ लेता नहीं।
अपने स्वार्थ–साधन से ऊपर,
स्वराज्य को
कोई स्थान देता नहीं।[33]

ऐसी यंत्रणा से जन–हित नहीं होगा तो मन की दुर्बलता को जीतकर जीवन का सार सुलभ बनेगा अन्यथा नहीं।

आजकल स्थान स्थानपर भ्रष्टाचार, अनाचार चल रहा है मानव सदाचार को भूल गया है। आज की नारी का आचरण उच्छृंखल है अतः गतकालीन स्त्री स्नेह और सतीत्व से ओत–प्रोत थी। इस तरह सामाजिक प्रवृत्तिपर गौतम का रोष दिखाई देता हैं। जैसे –

कहाँ वह नारी के स्नेह का
सतीत्व का
आजीवन अविचल संकल्प वरण,
और कहाँ आज यह
पग–पग पर अविचरित उच्छृंखल आचरण।[34]

आज की संध्या काल में कल का उषःकाल है। आज के दुख में कल याने भविष्य के सुख छिपे रहते हैं। अभिधम्म के मत के अनुसार जीवन यह सरित् प्रवाह की तरह हैं। उस प्रवाह में महाशून्य में स्वल्प शून्य मनोराग भी क्षय हो जाते है। इसमें अध्यात्म का दर्शन होता है। दीप बुझ जाने पर भी ज्योति का त्राण वही होता है। उसी तरह सब दुःखों से मुक्ति ही निर्वाण है, एकप्रकार की शांति हैं।

गौतम बुध्द ने कालचक्र की गति को भी पहचाना है। वह कहते है कि कालचक्र में मनुष्य की जिंदगी बंधी हैं। काल किसी के लिए भी रूकता है। उसकी गति निरंतर होती है। काल

किसी को भी मुक्त नहीं करता। प्रत्येक प्राणी को काल ने अपना भक्ष्य माना हैं। लेकिन मनुष्य ने कर्तव्य से कार्यरत रहना चाहिए, संकट का सामना करना चाहिए। असल में भाग्य में लिखा कोई नहीं जानता, जो होनेवाला है वह होकर ही रहता है उसमें आदमी का बस नहीं चलता इस लिए आदमी ने आज यह अपना हे कल पर भरोसा न रखकर आनंदता से अपनी जिंदगी बितानी चाहिए। जो मनुष्य पंचइंद्रियों पर विजय पाता है वहीं जीवन में मुक्ति पाता है। उसे भय, क्रोध, लोभ, मोह का भी उसपर प्रभाव नहीं पड़ता। इस तरह गौतम ने सारी इच्छा आकांक्षाओं से , अपने परिजनों से मुक्ति प्राप्त कर ली थी और विरक्त हो गये थे। गौतम आत्मा में आस्था नहीं मानते तो वे अपने नैरात्म्य–बोध का समर्थक थे। गौतम के वैराग्य भाव जैसे निर्मल, शांत जलधारा में ममता को अंदर ही अंदर समा देता है। गौतम का निर्वाण एक बिन्दु है कि जहाँ इस क्षणभंगुर संसार का सबकुछ नष्ट होता है। कुछ भी बाकी नहीं बचता। जिस तरह आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है उसी तरह प्रत्येक पल के लिए परिवर्तित मन एक दीपक की ज्योति की भाँति बुझकर विलीन हो जाता है। इसमें आध्यात्मिकता का दर्शन हमें हो जाता है। जैसे –

मेरा निर्वाण
वह बिन्दु है
जहाँ इस क्षण–भंगुर संसार का
सबकुछ निःशेष हो जाता है।
प्रतिक्षण परिवर्तित मत
दीपक की ज्योति–सा
बुझकर विलीन हो जाता है
दर्शक भी अन्ततः
दृश्य में समाता हैं।[35]

<u>निष्कर्ष :–</u>

डा. जगदीश गुप्तजी ने "गोपा गौतम" और "बोधिवृक्ष" इन दो खण्डकाव्य में गौतम बुध्द दर्शन विविध तरीके से किया हैं। जैसे कि उन्होंने गौतम का चरित्र सामान्य आदमी के रूप में आँका है उसने जो जगतकल्याण के लिए महान त्याग किया है उसका विवरण कर अपने बौध्द धर्म का प्रसार कर मानवतावादी, अस्तित्ववादी आदि अनेक प्रकार के दर्शन का ब्यौरा दिया है। गौतम बुध्द

मानवता के पुजारी थे। गौतम ध्यानी थे परन्तु उनका ध्यान निष्क्रीय नहीं बल्कि सक्रीय था। आत्मदर्शन भी बौध्द दर्शन में मिलता है। निष्पाप अर्हत् बौध्द साधना का निर्वचन है। बुध्द का धर्म बुध्दिप्रधान हैं। बौध्द धर्म में क्षणवाद, अस्तित्ववाद, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, सामजिक विषमता, समाजवाद, सर्वसमावेशकता, साम्यवाद तानाशाही का विरोध, समता के प्रचारक, व्यक्ति स्वातंत्र्य के प्रति चेतना, अहिंसा, कर्मशीलता, क्षणभंगुरता, भ्रष्टाचार, अत्याचार के खिलाफ बंड पुकारनेवाला आदि पर उपदेश देकर गौतम बुध्द ने समाज में जागृती निर्माण कर लोगों को अपने प्रती सजग रहने की प्रेरणा दी है जो आज भी हमपर सही साबित होती है यह एक नया बौध्द धर्म द्वारा दिया गया बहुत ही सुंदर दर्शन है। डा.जगदीश गुप्तजी ने भी इन कृतियों का निर्माण कर बहुत बडा योगदान देने में सफल हुए हैं।

<u>संदर्भ सूची :–</u>

1. शशि सहगल, ''नयी कविता में मूल्यबोध'', अभिनव प्रकाशक, 21 ए , दरियागंज, दिल्ली 110 006, प्रथम संस्करण 1976, पृ. 126

2. डा.उमाकान्त गुप्त, ''नयी कविता के प्रबन्ध काव्यशिल्प और जीवनदर्शन'', वाणी प्रकाशन, 4697/5, 21 ए दरियागंज , नई दिल्ली 110 002, प्रथम संस्करण 1985, पृ. 276

3. भरतसिंह उपाध्याय, ''बोधिवृक्ष की छाया में'', द्वितीय संस्करण 1986, पृ.21

4. डा.जगदीश गुप्त ''बोधिवृक्ष'' वाणी प्रकाशन, 4697/5, 21 ए दरियागंज, नई दिल्ली 110 002, प्रथम संस्करण 1987, पृ. 21, 22

5. वही, पृ. 67

6. वही, पृ. 80

7. भरतसिंह उपाध्याय, ''बोधिवृक्ष की छाया में'', पृ. 62

8. डा.जगदीश गुप्त, ''बोधिवृक्ष'', पृ. 36

9. डा.जगदीश गुप्त, ''गोपा गौतम'' वाणी प्रकाशन, 61 एफ कमलानगर दिल्ली 110 007, प्रथम संस्करण 1984, पृ. 112

10. वही, पृ. 117

11. डा.जगदीश गुप्त, ''बोधिवृक्ष'', पृ. 122

12. वही, पृ. 77

13. वही, पृ. 73

14. वही, पृ. 66

15. वही, पृ. 57

16. वही, पृ. 70–71

17. वही, पृ. 79

18. वही, पृ. 79

19. वही, पृ. 63, 64

20. वही, पृ. 81

21. डा.जगदीश गुप्त, ''गोपा गौतम'', पृ. 22
22. वही, पृ. 32
23. वही, पृ. 42
24. वही, पृ. 51
25. वही, पृ. 60
26. वही, पृ. 70
27. वही, पृ. 80, 81
28. वही, पृ. 87
29. वही. पृ, 93
30. वही, पृ. 100
31. वही, पृ. 103
32. वही, पृ. 108
33. वही. पृ. 110
34. वही, पृ. 114
35. वही, पृ. 123